अंक : 20 जुलाई, 2026

वीथिका ई पत्रिका

साहित्य, कला, संस्कृति, विज्ञान

DOI: 10.528/Zenodo.11063568

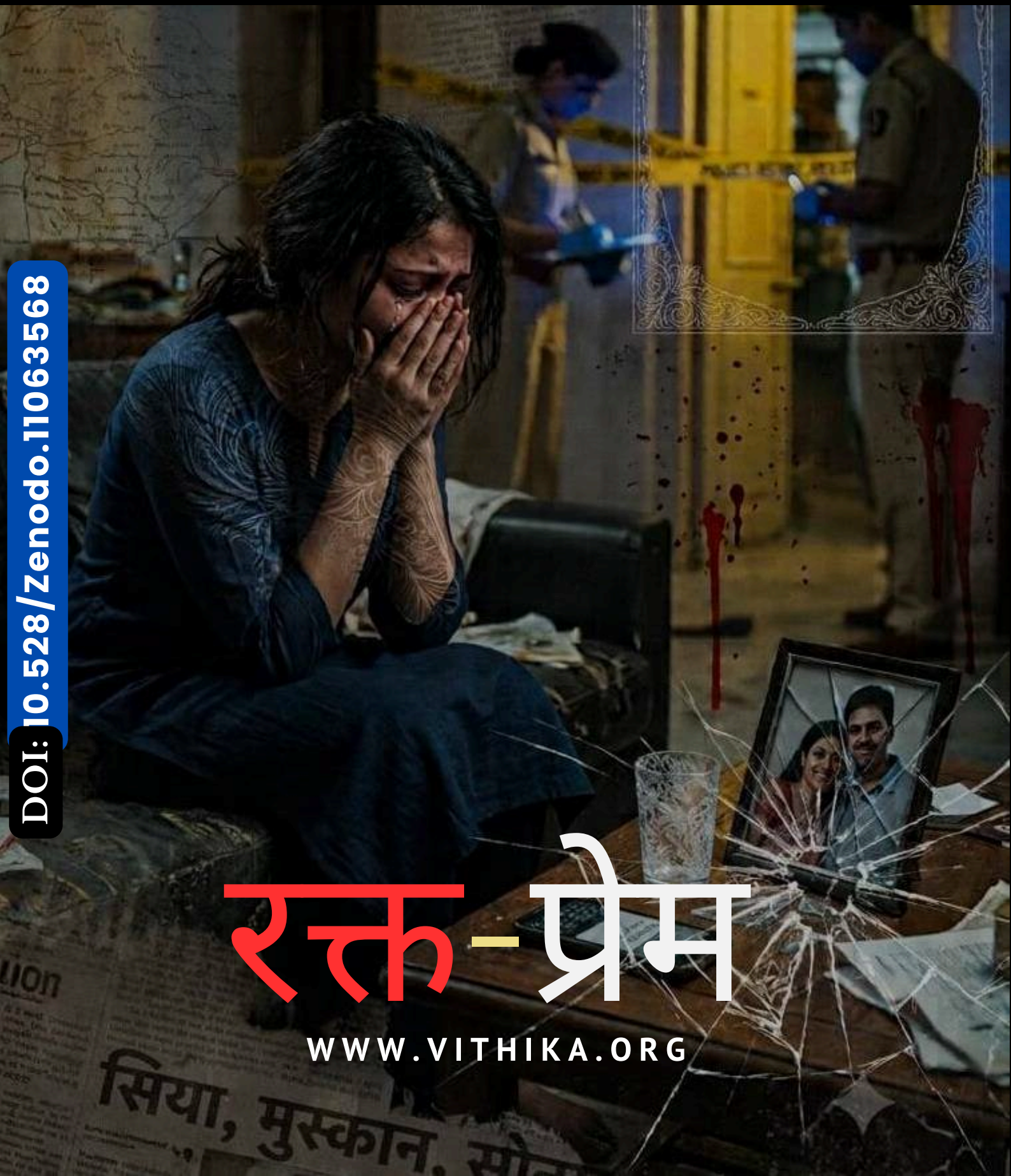

रक्त-प्रेम

WWW.VITHIKA.ORG

वीथिका ई पत्रिका

संपादक मंडल

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

चित्रा मोहन
मुख्य सलाहकार संपादक

सुमित उपाध्याय
प्रबंध संपादक

वीथिका परिवार

संरक्षक समिति
डॉ. बिपिन कुमार मिश्र

वरिष्ठ सलाहकार संपादक
डॉ. आशुतोष तिवारी

वरिष्ठ सह संपादक
डॉ. सुधांशु लाल

वेब डिज़ाइन
रोशन भारती

संपादकीय समिति

डॉ अरुण कुमार सिंह
डॉ धनञ्जय शर्मा
श्री मनोज कुमार सिंह
एड. सत्यप्रकाश सिंह
श्री बृजेश गिरि
श्री नन्दलाल शर्मा

कवर पेज संपादक
अर्चिता उपाध्याय

कार्टून संपादक
कृतिका सिंह

सलाहकार परिषद
डॉ अखिलेश पाण्डेय
डॉ शिवमूरत यादव

प्रकाशक
उज्ज्वल उपाध्याय
यशिका फाउंडेशन, मऊ

UDYAM-UP 55 0010534

vithikaportal@gmail.com

www.vithika.org

वीथिका ई -पत्रिका

पत्रिका में छपे सभी लेख
लेखक के अपने विचार हैं

अंक: 20

वीथिका ई पत्रिका

जुलाई, 2026

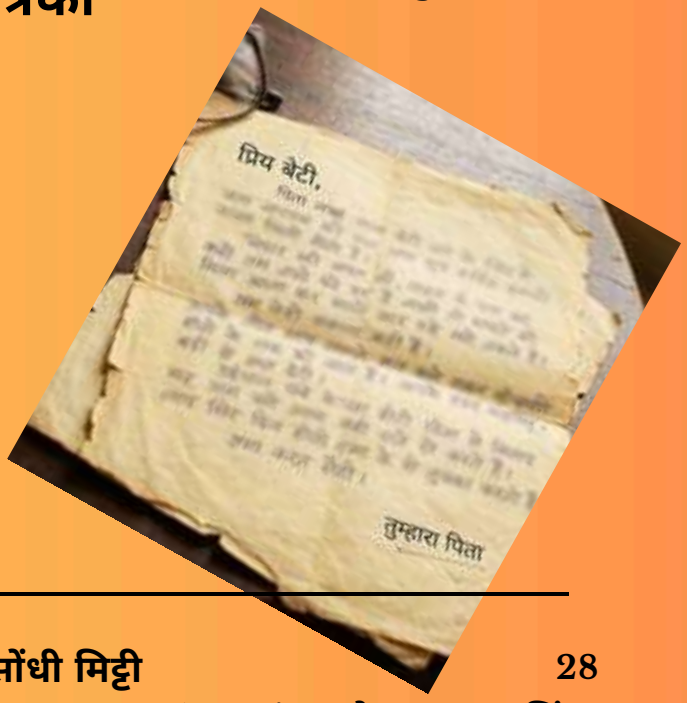

विषय सूची :

गलियों की बात 04

प्रेम, छल और समकालीन मनुष्य की त्रासदी : परिचय दास 06

प्रेम गली अति सांकरी : चित्रा मोहन 10

कश्मकश : तरुण कुमार 12

प्रेम कथाओं की महायात्रा : भारतीय साहित्य परम्परा : सुमित उपाध्याय 15

धुरंधर : फ़िल्म समीक्षा : डॉ.सुधांशु लाल 21

सशक्त युवा - समर्थ राष्ट्र :गंभीर सिंह 24

कहानी : वो चिट्ठी : संजना सिंह 26

चित भूमियाँ : विवेक मिश्रा 27

सोंधी मिट्टी 28
पवन कुमार 'मारुत', मनोज कुमार सिंह, डॉ धनंजय शर्मा, रोमिता शर्मा, आनंद विक्रम सिंह, कामरान खान

कृतिका के कार्टून : कृतिका सिंह 34

Visit

WWW.VITHIKA.ORG

to download this current issue to your tablet

वीथिका ई पत्रिका

गलियों की बात

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

प्रेम का रक्त रंजित होना या करना भारत की प्रेम परंपरा में रहा ही नहीं, भारतवर्ष की पहचान ही प्रेम में त्याग, धैर्य, तपस्या की रही है। हमारे यहां सबसे महत्वपूर्ण "परिवार" का बृहद व संयुक्त रुप ही प्रेम की जड़ों को गहराई तक पहुंचाना रहा है लेकिन दुर्भाग्यवश भौतिकतावाद की लिप्सा ने हमारी परम्पराओं, जीवनशैली, तरीके, रीति-रिवाजों पर ऐसा कुठाराघात किया के प्रतियोगिता की जगह प्रतिस्पर्द्धा, दिखावा, असंतुष्टि ने लिया नतीजतन एकाकी होने तथा बाज़ारवाद की कैद में जकड़ना कहीं मजबूरी तो कहीं शौक में बदल गया।

भारतीय रीति-रिवाज इतने सुन्दर हैं जो हमें समूह में ही संभव संतुष्टि परिलक्षित करते हैं जबके बाज़ार की जकड़न ने हमें अपनों से तथा जीने के तरीके से ही अलग कर दिया। बच्चे कहीं अकेले तो कहीं नौकर के साथ पलने को मजबूर हुए। बाल्यावस्था से ही संस्कार, शिष्टाचार, परिवार का सामीप्य, अनुशासन जान ही नहीं पा रहे। भौतिक सुख सुविधाओं की पूर्ति ही दायित्व की पूर्ति समझी जाने लगी है तो इस मासूम बचपन को किशोरावस्था से ही उद्दन्ड, उच्श्रृंखल तथा स्वछन्दता की ओर बढ़ने से रोकना असम्भव होने लगा है। बचपन से ही जो जी चाहा वो मिल जाना तथा जी भर जाने पर बदल लेने या छोड़ देने की आजादी ने नयी पीढ़ी को विनाश, विध्वंस की ओर उन्मुख किया है। अब जो बच्चा माता-पिता, परिवार, समाज के अनुशासन, नियम, बंधन से दूर रह कर भौतिक संसाधनों की समग्र पूर्ति अथवा न पाने के असंतोष में बड़ा हो रहा है। जिसने जीवन का मकसद मनचाहा पाने की दौड़ में इन सब "विशेषताओं "को जंजीर के रुप में समझा है उनके लिए मनचाहा न होने की हश्र में किसी भी हद तक गिरना ही परिणति है।

बात करें वैवाहिक परंपरा की तो दिखावे के लिए बाजार की दौड़ में कैद हम लोग विकृति को आधुनिक फैशन मान बैठे हैं। विवाह की हमारी रीति दुनिया के सर्वाधिक खुबसूरत तथा स्थायी नियमों में बंधी होती थी लेकिन नये चलन में हम खुद ऐसे गिरफ्तार हो चले हैं के फूहड़पन को फैशन समझ बैठे हैं। विवाह -बंधन की शुरुआत

ही बड़े-बुज़ूर्गो द्वारा छान-बीन तथा रिश्तेदारों की जिम्मेदारी तथा समाज की स्वीकृति से संपूर्ण होकर आजीवन चलने वाला महत्वपूर्ण रिश्ता होता था। इसमें ह्रास तथा पतन की स्थिति सबसे अधिक तब शुरु हुई जब कुछ लोगों ने लड़की को लड़के के समान या उससे अधिक बढ़ाने में प्रकृति से छेड़ -छाड़ शुरू की जबकि स्त्री तो स्वयं ही प्रकृति की अनुपम तथा सबसे महत्वपूर्ण रचना है। अब के विवाह में विवाह से पहले ही होने वाले अनेक रीतियों में से एक प्री वेडिंग शूट ने तो और भी हद तक हमारे संस्कारों को नंगा करके रख दिया है जिसमें दूर-दूर जाकर पहले ही अकेले मिलन ने उन लड़कियों को जो एकदम स्वछन्द हैं उनके लिए अवसर का काम किया है। या फिर शादी के बाद परिवार को बंधन मानकर दूर होकर विवाहेतर सम्बन्धों में बंधने अथवा मनमाने जीवनचर्या को बढ़ावा दिया है।

हमें जरुरत है फिर से अपने देश की परम्परा, रीति-रिवाजों, पारिवारिक अनुशासन की ओर लौटने की।

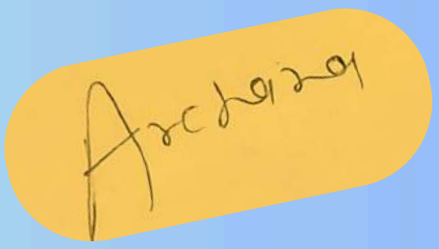

प्रेम, छल और समकालीन मनुष्य की त्रासदी

परिचय दास
प्रोफेसर, नव नालंदा महाविहार
नालंदा सम विश्वविद्यालय,
संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार

"सिया-केतन~चेतन चौधरी कांड" से आशय पुणे के चर्चित केतन अग्रवाल हत्याकांड से है, जो जून, 2026 में सामने आया। इसमें 26 वर्षीय व्यवसायी केतन अग्रवाल की मृत्यु पहले एक दुर्घटना मानी गई थी लेकिन बाद में पुलिस ने इसे कथित हत्या की साजिश बताया। मामले के अनुसार, केतन की मंगेतर सिया गोयल और उसके कथित प्रेमी चेतन चौधरी पर आरोप है कि उन्होंने लोहागढ़ किले के पास ट्रेकिंग के दौरान केतन को खाई में धक्का देकर मारने की योजना बनाई। पुलिस का दावा है कि घटना को दुर्घटना की तरह दिखाने का प्रयास किया गया था। जांच में यह भी सामने आया कि सिया और चेतन के बीच लंबे समय से संपर्क था और कॉल रिकॉर्ड पुलिस की जांच का हिस्सा बने। पुलिस ने दोनों को गिरफ्तार कर पूछताछ शुरू की। हालाँकि, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मामला अभी न्यायिक प्रक्रिया में है। चेतन चौधरी के वकील ने अदालत में कहा है कि उसके खिलाफ आरोप अभी सिद्ध नहीं हुए हैं और बचाव पक्ष का दावा है कि उसे फँसाया जा रहा है। इसलिए संक्षेप में, "सिया-चेतन चौधरी कांड" एक कथित प्रेम-संबंध, तयशुदा विवाह, और केतन अग्रवाल की संदिग्ध मृत्यु से जुड़ा हाई-प्रोफाइल आपराधिक मामला है, जिसकी जांच और न्यायिक सुनवाई अभी जारी है।"

।। एक।।

केतन, सिया और चेतन चौधरी से जुड़ा यह प्रकरण केवल एक संभावित अपराध-कथा नहीं है; यह हमारे समय की उन दरारों का भी दर्पण है, जो आधुनिक जीवन की चमकदार सतह के नीचे लगातार चौड़ी होती जा रही हैं। न्यायालय का अंतिम निर्णय अभी आना शेष है, इसलिए किसी व्यक्ति के दोषी या निर्दोष होने पर टिप्पणी करना उचित नहीं होगा किंतु इस घटना ने जिन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रश्नों को जन्म दिया है, वे अपने आप में विचारणीय हैं। यह घटना सबसे पहले प्रेम और प्रतिबद्धता की बदलती अवधारणा पर प्रश्नचिह्न लगाती है। भारतीय समाज लंबे समय तक विवाह को केवल दो व्यक्तियों का नहीं, बल्कि दो परिवारों और दो सामाजिक संसारों का संबंध मानता रहा। आधुनिक शहरी जीवन में प्रेम को व्यक्तिगत स्वतंत्रता का क्षेत्र माना जाने लगा है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति एक साथ अनेक भूमिकाएँ निभाने लगता है। वह प्रेम भी चाहता है, सामाजिक स्वीकृति भी चाहता है, आर्थिक सुरक्षा भी चाहता है और अपनी इच्छाओं की पूर्ण स्वतंत्रता भी चाहता है। इन सबके बीच जब निर्णय की घड़ी आती है, तब कई लोग सत्य का सामना करने के बजाय छल, छिपाव और दोहरे जीवन का मार्ग चुन लेते हैं।

समकालीन समाज की एक बड़ी विडंबना यह है कि उसने विकल्प तो बहुत बढ़ा दिए हैं लेकिन निर्णय लेने की क्षमता उतनी विकसित नहीं की। संबंधों की दुनिया में आज अवसर अधिक हैं किंतु धैर्य कम है। संवाद के साधन बढ़े हैं परंतु संवाद की गुणवत्ता घटती गई है। लोग एक-दूसरे से लगातार जुड़े हुए दिखाई देते हैं, फिर भी भीतर से अलग-थलग हैं। ऐसे में संबंध अनेक बार भावनात्मक परिपक्वता के बजाय तात्कालिक आकर्षण और सुविधा पर आधारित हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक स्तर पर देखें तो यह घटना इच्छा और उत्तरदायित्व के संघर्ष को सामने लाती है। मनुष्य अक्सर वह सब कुछ चाहता है जो एक-दूसरे के साथ संभव नहीं होता। वह स्वतंत्रता भी चाहता है और सुरक्षा भी। वह रोमांच भी चाहता है और स्थायित्व भी। वह नए अनुभव भी चाहता है और पुराने संबंध भी बचाए रखना चाहता है। जब ये इच्छाएँ टकराती हैं, तब एक परिपक्व व्यक्ति कठिन निर्णय लेता है, जबकि अपरिपक्व मन कई बार वास्तविकता से भागने लगता है। यही भागना कभी-कभी विनाशकारी रूप ले सकता है।

इस घटना का एक सांस्कृतिक पक्ष भी है। भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। पुरानी नैतिक व्यवस्थाएँ कमजोर हुई हैं, लेकिन नई नैतिक व्यवस्थाएँ अभी पूरी तरह स्थापित नहीं हुई हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति अनेक बार दो संसारों के बीच खड़ा दिखाई देता है। वह आधुनिक जीवन की स्वतंत्रता तो स्वीकार करता है, पर स्वतंत्रता के साथ आने वाली नैतिक जिम्मेदारियों को स्वीकार नहीं करना चाहता। यही असंतुलन अनेक व्यक्तिगत त्रासदियों को जन्म देता है। यह मामला एक और गहरी बात की ओर संकेत करता है। हमारे समय में भावनाएँ भी उपभोग की वस्तु बनती जा रही हैं। प्रेम, मित्रता, विवाह और संबंधों को भी कई बार उपयोगिता के पैमाने पर मापा जाने लगा है। जब तक कोई व्यक्ति हमारी इच्छाओं की पूर्ति करता है, वह महत्त्वपूर्ण लगता है; जैसे ही परिस्थितियाँ बदलती हैं, संबंधों की नींव हिलने लगती है। यह दृष्टिकोण संबंधों को गहराई नहीं देता, बल्कि उन्हें अस्थायी बना देता है। सामाजिक मीडिया ने भी इस समस्या को और जटिल बनाया है। आज लोग अपने वास्तविक जीवन से अधिक अपने निर्मित जीवन को जीने लगे हैं। वे अपनी छवि को बचाने के लिए वास्तविकता को छिपाते हैं। कई बार संबंध टूटने की पीड़ा से अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा खोने का भय लोगों को परेशान करता है। परिणामस्वरूप सत्य का सामना करने के बजाय वे जटिल झूठों का जाल बुनते चले जाते हैं। मनुष्य की सबसे बड़ी त्रासदी यह नहीं कि वह गलती करता है; त्रासदी यह है कि वह अपनी गलती स्वीकारने का साहस खो देता है।

इस पूरे प्रसंग में एक और प्रश्न उभरता है: क्या आधुनिक शिक्षा ने भावनात्मक परिपक्वता विकसित की है? लोग उच्च डिग्रियाँ प्राप्त कर रहे हैं, बड़े पदों पर पहुँच रहे हैं, लेकिन क्या वे अस्वीकृति सहना सीख पाए हैं? क्या वे संबंधों के टूटने को हिंसा या प्रतिशोध के बिना स्वीकार कर पाते हैं? क्या वे अपने भीतर के क्रोध, ईर्ष्या और असुरक्षा को समझते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर हमेशा सकारात्मक नहीं दिखाई देता। ललित दृष्टि से देखें तो यह घटना किसी अपराध समाचार से अधिक एक टूटे हुए विश्वास की कथा है। विश्वास मनुष्य की सबसे अदृश्य संपत्ति है। वह एक बार टूट जाए तो केवल एक व्यक्ति नहीं, पूरा सामाजिक ताना-बाना घायल होता है। प्रेम का सौंदर्य विश्वास में है; विश्वास के बिना प्रेम केवल आकर्षण रह जाता है। विवाह का अर्थ केवल साथ रहना नहीं, बल्कि दूसरे के जीवन की सुरक्षा और सम्मान का दायित्व लेना भी है। जब यह दायित्व समाप्त हो जाता है, तब संबंध केवल औपचारिक ढाँचा बनकर रह जाते हैं।

इसलिए यह घटना केवल तीन व्यक्तियों की कहानी नहीं है। यह हमारे समय की कहानी है। यह उस युग की कहानी है जिसमें इच्छाएँ तेज़ हैं, लेकिन आत्मसंयम कमजोर; विकल्प अनंत हैं, लेकिन निर्णय दुर्लभ; संपर्क बहुत हैं, लेकिन विश्वास कम। आधुनिक मनुष्य अंतरिक्ष तक पहुँच गया है, पर अपने ही मन के अंधेरे कमरों को अभी तक पूरी तरह नहीं समझ पाया। और कई बार सबसे बड़ी दुर्घटनाएँ वहीं जन्म लेती हैं, जहाँ मनुष्य अपने भीतर की सच्चाई से आँखें चुरा लेता है।

।। दो।।

इस प्रसंग का एक और पक्ष है, जो दिखाई कम देता है पर शायद सबसे अधिक निर्णायक है। वह है मनुष्य के भीतर बढ़ती हुई आत्म-केंद्रिकता। आधुनिक जीवन ने व्यक्ति को अभूतपूर्व स्वतंत्रता दी है, किंतु उसी के साथ उसे स्वयं का सबसे बड़ा उपासक भी बना दिया है। "मैं क्या चाहता हूँ", "मुझे क्या चाहिए", "मेरी खुशी क्या है" जैसे प्रश्न इतने प्रमुख हो गए हैं कि "मेरे निर्णय से दूसरे का जीवन कैसे प्रभावित होगा" यह प्रश्न पीछे छूटता जा रहा है। जब किसी समाज में अधिकारों की चर्चा कर्तव्यों से अधिक होने लगे, तब संबंध धीरे-धीरे अनुबंध में बदलने लगते हैं।

पुराने समाजों में अनेक दोष थे, अनेक अन्याय थे, परंतु वहाँ संबंधों के भीतर उत्तरदायित्व की एक मजबूत भावना भी थी। आज व्यक्ति अधिक स्वतंत्र है, पर अनेक बार अधिक अकेला भी। वह अपनी इच्छाओं का स्वामी बनना चाहता है, किंतु अपने निर्णयों के परिणामों का भार उठाने से बचना चाहता है। यह विरोधाभास केवल किसी एक व्यक्ति की समस्या नहीं है; यह पूरे समय की मानसिक संरचना का हिस्सा बन चुका है। इस घटना को यदि प्रतीक की तरह पढ़ा जाए, तो यह प्रेम की विफलता से अधिक संवाद की विफलता दिखाई देती है। दो परिपक्व मनुष्य किसी संबंध को समाप्त भी कर सकते हैं और सम्मान बनाए रख सकते हैं। किंतु जब संवाद मर जाता है, तब कल्पनाएँ जन्म लेती हैं; जब सत्य दबा दिया जाता है, तब भय बढ़ता है; और जब भय बढ़ता है, तब मनुष्य ऐसे निर्णय लेने लगता है जिनकी कीमत अनेक जीवनों को चुकानी पड़ती है। मनोवैज्ञानिक रूप से देखें तो मनुष्य का सबसे खतरनाक क्षण वह होता है जब वह अपने मन में स्वयं को सही सिद्ध कर चुका होता है। उस समय वह वास्तविकता को नहीं देखता, केवल अपने तर्कों को देखता है। वह अपने भीतर एक ऐसा संसार बना लेता है जहाँ उसके निर्णय उचित प्रतीत होते हैं। इतिहास के बड़े अपराधों से लेकर व्यक्तिगत त्रासदियों तक, अनेक घटनाओं के पीछे यही मानसिक प्रक्रिया काम करती रही है। मनुष्य पहले अपने विवेक को पराजित करता है, उसके बाद ही किसी और को चोट पहुँचाता है।

यह भी विचारणीय है कि समकालीन संस्कृति ने सफलता की परिभाषा को अत्यधिक बाहरी बना दिया है। अच्छा करियर, आकर्षक जीवन, सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक सुविधा; ये सब महत्त्वपूर्ण हैं, किंतु इन्हें ही जीवन का केंद्र बना देने पर भावनात्मक और नैतिक विकास पीछे छूट जाता है। परिणाम यह होता है कि व्यक्ति तकनीकी रूप से शिक्षित तो हो जाता है, लेकिन जीवन की कठिन परिस्थितियों से निपटने की क्षमता विकसित नहीं कर पाता। इस घटना के संदर्भ में एक गहरी सांस्कृतिक विडंबना भी दिखाई देती है। प्रेम पर पहले से कहीं अधिक बातें हो रही हैं, प्रेम के प्रदर्शन पहले से कहीं अधिक हैं, किंतु प्रेम का धैर्य पहले से कम दिखाई देता है। प्रेम केवल आकर्षण नहीं है; वह दूसरे व्यक्ति की स्वतंत्रता को स्वीकार करने का साहस भी है। वह यह स्वीकार करने की क्षमता भी है कि हर इच्छा पूरी नहीं होगी, हर संबंध स्थायी नहीं होगा और हर कहानी हमारे मनोनुकूल समाप्त नहीं होगी। जहाँ यह स्वीकृति नहीं होती, वहाँ प्रेम धीरे-धीरे अधिकार-बोध में बदल सकता है।

ललित दृष्टि से यह पूरा प्रसंग किसी सूखे वृक्ष की तरह प्रतीत होता है। कभी उस वृक्ष पर विश्वास के पत्ते रहे होंगे, उम्मीद के फूल रहे होंगे, भविष्य के सपने रहे होंगे। फिर कहीं कोई दरार पड़ी होगी। शायद कोई बात अनकही रह गई होगी। शायद कोई सत्य समय पर स्वीकार नहीं किया गया होगा। शायद किसी ने अपने भीतर की बेचैनी को पहचानने के बजाय उसे छिपा लिया होगा। और फिर धीरे-धीरे वह वृक्ष भीतर से खोखला होता गया होगा। बाहर से वह हरा दिखता रहा, लेकिन भीतर दीमक अपना काम करती रही। मानव संबंधों की सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि उनका विनाश अचानक नहीं होता। वह लंबे समय तक अदृश्य रूप से चलता रहता है। एक झूठ, एक छिपाव, एक अनकही बात, एक अधूरा संवाद; ये सब मिलकर धीरे-धीरे विश्वास की नींव को कमज़ोर करते हैं। जब अंतिम घटना घटती है, तब लोग उसे कारण समझ लेते हैं, जबकि वह केवल परिणाम होती है।

समकालीन मूल्यों की दृष्टि से इस घटना का सबसे महत्त्वपूर्ण संदेश शायद यही है कि स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व को अलग नहीं किया जा सकता। यदि व्यक्ति को अपने जीवन के निर्णय लेने का अधिकार है, तो उसे

उन निर्णयों के परिणामों का सामना करने का साहस भी होना चाहिए। सत्य कठिन हो सकता है, संबंध टूट सकते हैं, सामाजिक आलोचना हो सकती है, किंतु असत्य के ऊपर खड़ा किया गया कोई भी जीवन अंततः अपने ही भार से ढह जाता है।

यह प्रसंग हमें एक असुविधाजनक किंतु आवश्यक सत्य की याद दिलाता है: मनुष्य की सबसे बड़ी लड़ाई किसी दूसरे मनुष्य से नहीं होती। वह अपने भीतर की लालसाओं, भय, असुरक्षाओं और छल से लड़ रहा होता है। जो इस लड़ाई में हार जाता है, वह बाहर चाहे कितना भी सफल दिखाई दे, भीतर से विखंडित हो जाता है। सभ्यता की वास्तविक परीक्षा अदालतों, विश्वविद्यालयों या बाज़ारों में नहीं होती; वह मनुष्य के अंतःकरण में होती है, उस क्षण जब कोई देख नहीं रहा होता और उसे केवल अपने विवेक के साथ निर्णय लेना होता है। वहीं से समाज बनता है, वहीं से टूटता भी है।

प्रेम गली अति सांकरी

चित्रा मोहन
प्रसिद्ध नाट्य निर्देशिका
लखनऊ, उ.प्र.

आजकल युवा पीढ़ी की प्रेम कहानियों का, रवींद्र कालिया द्वारा संपादित संकलन पढ़ते हुए आनंद चौगुना बढ़ता चला जाता है।

वैसे देखा जाए तो इश्क़े हक़ीक़ी का प्रयोग ईश्वर प्रेम और इश्क़े मजाज़ी का सांसारिक प्रेम के लिए होता है। महानगरों में, प्रेम की परिकल्पना में तेज़ी से बदलाव आया है। यहां प्रेम करियर की सीढ़ी है। इसीलिए यहां इश्क़े हक़ीक़ी वाली बात नहीं जो लग जाए तो घुन की तरह खाए जाए,बल्कि भौंरे की तरह जिधर रस नज़र आए उधर ही मुड़ जाता है,एकदम दिलफेंक होता है। नई पीढ़ी प्रेम के बारे में क्या सोचती है,इसकी झलक इस पुस्तक के संकलन में चुनी कहानियों में स्पष्ट दिखती है। पंकज मित्र की कहानी,"पप्पू कांट लव सा...", मनोज कुमार पाण्डेय की " और हंसो लड़की", राहुल सिंह की "नहीं,तो,मतलब,लेकिन हां" प्रियदर्शन मालवीय की "प्रेम न हाट बिकाय",कुणाल सिंह की " प्रेम कथा में मोजे की भूमिका,आदि अनेक कहानियों में नई दृष्टि मिलती है।

पप्पू कांट लव, लव जिहाद की परिधि में एकतरफा प्रेम की परिणिति है, पीटे जाते पप्पू से भीड़ का कहना....."प्रणाम पप्पू जी बोलिए जय हिंद
पप्पू–जय हिंद
भीड़– बोलिए भारत माता की जय
पप्पू,–,भारत माता की जय
भीड़– चलिए, शर्मा जी ने बुलाया है आपको,वहां स्कूल के पीछे वाले मैदान में।
पप्पू–हां हां चलिए
एक लड़के के पीछे बाइक पर उचक कर बैठ गए पप्पू,तरह तरह की संभावनाओं से मन हुमक रहा था..."जरूर सुवी शर्मा आई होगी,उसी ने बुलवाया होगा",.....पर वहां पहुंच कर ताज्जुब में पड़ गए,कोई नहीं था, निपट सुनसान,उन्हें हैरानी हो रही थी,लड़कों का घेरा उनके चारों ओर कसता क्यों जा रहा था?
कहां है शर्मा अंकल?
आयेंगे-आयेंगे
और पप्पू जी ये गुलाब के फूल?
वो आज वेलेंटाइन डे है न इसलिए
सड़ाक..... चेन लगी थी टांगों पर
"पप्पू की बॉडी फाइन है रग रग तोड़ दो साले की, तड़ाक,सिर पर डंडा पड़ा था।,पप्पू का तेज़ माइंड है..
बहते खून से आंखे झिपने से पहले सुनाई दिया.....
"फिदायीन है ये ...रक्त प्रदूषित कर देंगे हमारा...
पप्पू गिर चुके थे,लड़के हंस रहे थे..."बट पप्पू कांट लव साला,....
पप्पू के बदन ऐंठ रहा था किंतु उनकी मुट्ठी में भिंचा एक छोटा सा कार्ड लहरा रहा था,जिसे इतने घाव लगने के बाद भी उन्होंने नहीं छोड़ा था, उस पर लिखा था....."सुवी शर्मा,आई आई टी मुंबई..और एक कोने
में लिखा था"विथ लव ..,पप्पू" ।

दूसरी कहानी "राहुल सिंह की, नहीं तो मतलब हां" एक और रंग दिखाती है जहां प्रेम का दर्शन भी प्रत्यक्ष दिखते हुए स्वप्न में बदल जाता है। ये कथा शिल्प का अनूठा प्रयोग है।

"अब बता ही दो,पूछ रही हूं
मैं तुम्हारे प्रति लापरवाह रहा।
लेकिन मैं यहां हूँ,क्योंकि मैं तुम्हारी परवाह करती हूं।
तुम्हे मालूम है कि मैं अब तक क्यों अकेला रहा?
क्योंकि किसी को प्रपोज़ करने की हिम्मत ही नहीं थी।
"नहीं,क्योंकि जो मुझसे बेहतर थीं उन्होंने मेरी तरफ़ कभी पलटकर भी नहीं देखा और मैं जिनसे बेहतर था,उनकी तरफ़ मैने कभी मुड़ कर नहीं देखा।"
"मतलब मौके के अभाव में ब्रम्हचारी बने बैठे थे?"
"कुछ ऐसा ही समझो"
"तो सबसे पहले मुझे इस बूढ़े बाघ के कंगन छीनने होंगे,?"
"अब इस बाघ का आभूषण तुम हो"
"सच में?"
"नहीं,झूठ में"
मज़ाक मत करो"
"मैं सीरियस हूँ"
"पीटूंगी तुम्हें"
"क्यों?
"क्योंकि प्यार आ रहा है"
(रोहन कहां है जी.....)
"यह प्यार जताने का कौन सा तरीका है?"
(कब इसकी आदतें सुधरेंगी?)
"तो मैं अपना तरीका बताता हूँ, ज़रा अपने होंठों को मेरे नज़दीक़ आने दो..."
(रोहन अब उठो भी,दस बज गए, दुकान का शटर भी उठाना है। पता नहीं बेटा,तुम्हारी ज़िन्दगी कैसे चलेगी?)
"क्या पापा,दो मिनट बाद नहीं जगा सकते थे? अच्छी भली जिंदगी शुरू कर रहा था.....।

प्रियदर्शन मालवीय की"प्रेम न हाट बिकाय" में अलग ही रंग नज़र आता है.....युवती सोनी और युवक मज़हर की बातचीत के कुछ अंश देखिए.....

“युवती पूरे दार्शनिक मूड में थी,उसने पूछा,"अच्छा मज़हर बताओ प्यार क्या है? क्या यह आकर्षण मात्र है?
"नहीं, आकर्षण क्षणभंगुर होता है।इसमें ह्रासमान तुष्टिगुण नियम काम करता है।"युवक ने जवाब दिया।
"क्या यह वात्सल्य है"युवती ने पूछा।
"नहीं,वात्सल्य में दया और दयालु का भाव होता है।। इसमें द्वैत का भाव है जबकि प्रेम अद्वैत है"युवक ने कहा।
"क्या ये श्रद्धा है?"युवती ने पूछा।
"नहीं ,श्रद्धा में गैरबराबरी का भाव होता है,इसमें एक छोटा एक बड़ा होता है जबकि प्रेम के प्रत्यय का आधार ही बराबरी है"युवक ने कहा।
"तो फिर आख़िर प्रेम है क्या?" युवती ने पूछा।
"प्रेम व्यक्ति के भीतर एक सक्रिय शक्ति का नाम है जो व्यक्ति और दुनिया के बीच की दीवार तोड़ डालती है,उसे दूसरों से जोड़ देती है"युवक ने अपना ज्ञान बघारा.....
यहां प्रेम के नैतिक और आध्यात्मिक विवेचन से जातिगत भाव पीछे जाता दिखता है। इसी तरह मनोज कुमार पांडे की कहानी भी प्रेम के आधुनिक रंग की व्याख्या करती है,जहां धर्म, जाति और मानसिक विचार समय के विकास के साथ किस तरह बदलते जाते हैं।
इन सारी कहानियों को पढ़ते इस नतीजे पर पहुंची कि “प्रेम के आधुनिक भावबोध में, पुरातन का अभाव है,इसके कारण अनेकानेक हैं किंतु अब ठहराव,गंभीरता,प्रतीक्षा,धैर्य,स्वयं को दूसरे में विलीन करने की चाह समाप्त सी हो गई है। प्रेम भी लेनदेन सा हो चला किंतु फिर भी ये कटु सत्य है कि प्रेम गली अति सांकरी....

अच्छे-अच्छे विफल हो जाते हैं किंतु गली के उस पार यार का दीदार करने की अपूर्ण इच्छा लिए ही पराजित या नष्ट हो जाते हैं। इस गली में जाने के लिए “मैं”का चोला उतारना पड़ता है,तभी ये गली उस पार का अलौकिक आनंद प्रदान करती है।”

कश्मकश

तरुण कुमार
मुंबई, महाराष्ट्र
अभिनेता | निर्देशक | पटकथा लेखक

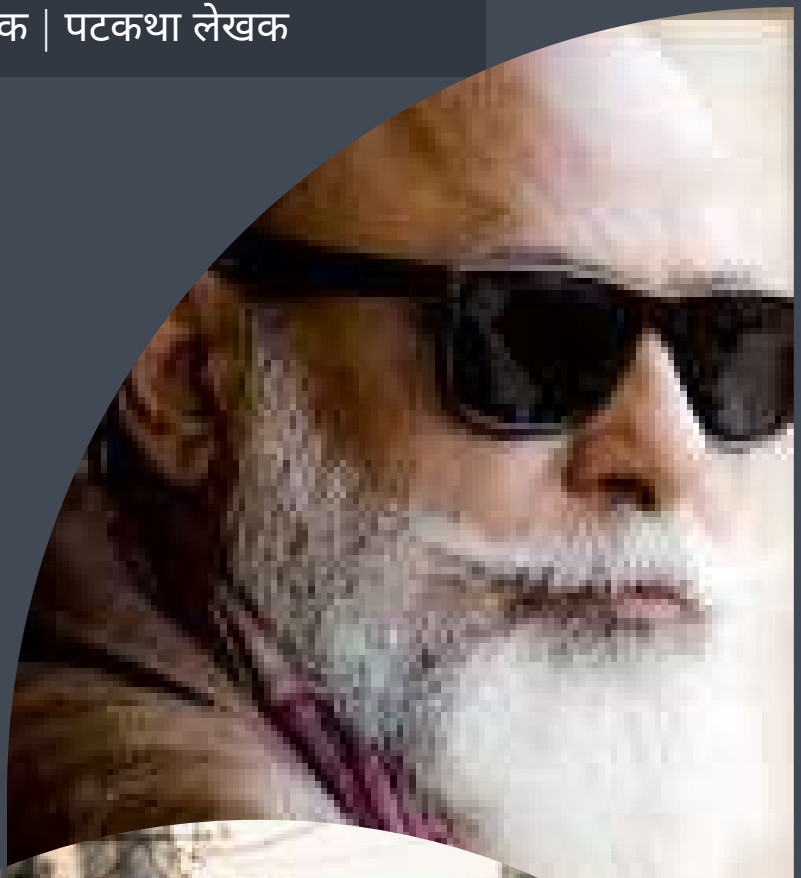

बड़ी अजीब सी कश्मकश में हूं,
करना भी है और छुपाना भी है।

तुम्ही से है तो है,
पर मालूम भी नहीं,
तुम्ही कहो
इस सूरते हाल का
कोई हल हो तो कहो।

अर्से से इंतज़ार तो था इस लम्हे का,
अब सामने ये कश्मकश,
न जाने क्यों,
है तो है।

क्या करूं तुम्ही कहो
करूं तो क्या करूं,
उंगलियों में उंगलियां उलझी तो हैं।

ज़बाँ पर लफ्ज़,
क्यों आते नहीं।
लटें बिखरी,
न जाने कबसे बेकरार तो हैं
जिस्म पर बिखर जाने को,
कोई इनको संवारे तो क्यों संवारे,
चेहरे पर पसीने की बूंदे
हैं तो हैं।

पेशानी पे बल,
कोई इनको समझे तो क्यों समझे,
लबों पे थिरकन
है तो है।

वो खिड़की जो खुली तो है

ना जाने क्यों
वो खिड़की जो खुली
तो है,
पर न जाने क्यों
बंद से हालात क्यों।

अर्से से तक रहा हूं,
जहरीली हवाओं के दौर में।
मौसम का बदलना
बदस्तूर चल रहा।
पर्दा तो है,
सरका के दरकिनार
आहटें भी मिल रही हैं।

खिड़की के पार की दीवार
साफ़-ओ-शफ़्फ़ाफ़ भी तो है,
रोशनी की आमद भी ख़ूब है,
धड़कने भी साफ सुन रहा हूं,
आंखों का उठना-झुकना,
मिलना-मिलाना मुक्कमल है।

बस लम्हों का मिलना-मिलाना,
तलब का तलबी में तब्दील होने
का इंतजार है।

जुलाई, 2026

प्रेम कथाओं की महायात्रा :

भारतीय साहित्य परम्परा

सुमित उपाध्याय
प्रबंध संपादक
वीथिका ई पत्रिका

कबीरा इश्क का माता

भारतीय साहित्य भारतीय जनमानस की आदिकाल से लेकर वर्तमान आधुनिक युग तक के सामाजिक विकास की यात्रा है। इस यात्रा में साहित्य नाना प्रकार के आंदोलनों, मतों, दर्शनों से प्रभावित हुआ। हमारे साहित्य की विशाल शब्द संपदा बहुत से विराट जन आन्दोलनों का परिणाम है।

हजार वर्ष पूर्व रहा बौद्ध धर्म, तदोपरांत संत मत, फिर भक्तों की विभिन्न परम्पराएं और उनसे उपजा सगुण व निर्गुण भक्ति आन्दोलन, इतिहास के साथ आगे बढ़ा रीतिकाव्य, पुनर्जागिरण काल, भारत का स्वतंत्रता आन्दोलन और उसके बाद समकालीन प्रश्नों का हल ढूंढ़ता समकालीन साहित्य और वर्तमान साहित्य, ये सभी उस एक महान यात्रा के महत्वपूर्ण पड़ाव रहे हैं जिनसे होकर न केवल हमारी अनेक भाषाएं व इनका साहित्य बल्कि सम्पूर्ण भारतीय जनमानस निर्मित हुआ है।

भारतीय जनमानस की सबसे बड़ी पहचान है, भारतीय संस्कृति और भारतीय संस्कृति का बीज शब्द है प्रेम। वह प्रेम जिसने मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री रामचन्द्र जी के व्यक्तित्व का निर्माण किया। भारतीय साहित्य जगत के शशि तुलसीदास जी जब राम का संधान करते हैं तो रामचरित मानस का आधार नर-लीला को बनाते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी तुलसी दास जी के संदर्भ में कहते हैं "उनके सभी पात्र उसी प्रकार हाड़-मांस के जीव हैं, जिस प्रकार काव्य का पाठक, परन्तु फिर भी उनमे अलौकिकता है ।.....जीवंत पात्र सिर्फ श्वास-प्रश्वास ही नही लेते, सिर्फ हमारी भांति नाना प्रकार की संवेदनाओं को ही नहीं अनुभव करते, बल्कि वे आगे बढ़ते हैं, पीछे हटते हैं, अपनी उदात्त वाणी और स्फूर्तिप्रद क्रियाओं से हमारे अंदर ऊपर उठने का उत्साह भरते है, हमें साथ ले लेते हैं, हम उनका संग पा जाने पर उल्लसित होते हैं, उमंगते हैं और सन्मार्ग पर चलने में जो विघ्न बाधाएं आती हैं उन्हें जितने का प्रयास करते हैं ।" और इस राम के जीवन के हर पड़ाव पर प्रेम अपने दोनों ही रूपों विरह और संयोग के सहारे खूब आया है । कृष्ण लीला का सूर और मीरा ने जैसा रूप दिखा दिया वह विश्व साहित्य में अन्य किसी भी प्रकरण में नहीं मिलता । इस प्रकार प्रेम ही हमारे साहित्य का प्रथम स्वर है ।

पर इस साहित्य के निर्माण और विकास में अलग-अलग समय पर अनेक बाधाएं भी आयीं । इन बाधाओं ने समाज में हर स्तर पर अनेक बदलाव किये । डॉ रामधारी सिंह दिनकर जी ने अपनी पुस्तक "संस्कृति के चार अध्याय" में इन बदलावों को क्रांति नाम दिया है । हिंदी के साहित्य इतिहास के अध्ययन की सरलता के लिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने जो कालनिर्धारण किया है उसके पीछे भी यही राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक कारण मौजूद हैं । आर्य भारत में मध्य एशिया से आये और आर्येतर जातियों से मिलकर एक समाज बनाया । कालान्तर इस सामाजिक व्यवस्था में दोष सामने आये और महावीर तथा गौतम बुद्ध ने इस स्थापित व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष किया । और एक नये मत की स्थापना हुई । आगे चलकर इस मत में भी विभाजन हुआ और अलग-अलग प्रकार की समस्याएं जन्म लेने लगीं। तंत्र-मन्त्र, जादू-टोना जैसी पद्धतियाँ अपनायी जाने लगीं । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने बौद्ध धर्म के अंतिम दशा पर विचार किया है । वे कहते हैं, " ऐसा हो सकता है कि राजा लोग जब बौद्ध तत्ववाद के कायल नहीं रहे तब बड़े-बड़े बौद्ध मठ, जो अधिकांश में राजकीय सहायता से चल रहे थे, उठ गये होंगे । पर उन्होंने निचले स्तर के आदमियों में जो प्रभाव छोड़ा था, उसमें केवल नाम-रूप का परिवर्तन हुआ, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शंकराचार्य के तत्त्ववाद की पृष्ठ-भूमि में बौद्ध तत्त्ववाद अपना रूप बदलकर रह गया। बड़े-बड़े बौद्ध मठों ने शैव मठों का रूप लिया और करोड़ों की संख्या में जनता आज भी उन मठों के महंतों की पूजा करती आ रही है। वस्तुतः हर्ष के बाद उत्तर भारत में (विशेषकर इन प्रदेशों में) बहुत दिनों तक बौद्ध धर्म को कोई राजकीय सहारा नहीं मिला । न मिलने के कारण या तो बौद्ध संन्यासियों को उन स्थानों पर चला जाना पड़ा जहाँ उन्हें संरक्षण मिल सकता था, या निचले स्तर के लोगों को अधिकाधिक आकृष्ट करना पड़ा । आठवीं-नवीं शताब्दी में बौद्ध महायान संप्रदाय लोकाकर्षण के रास्ते बड़ी तेजी से बढ़ने लगा। वह तंत्र, मंत्र, जादू, टोना, ध्यान-धारणा' आदि से लोगों को आकृष्ट करता रहा । " सम्राट हर्षवर्धन (606-647 ई) के बाद उत्तर भारत में बौद्ध धर्म को कोई राजाश्रय प्राप्त नहीं हुआ । आठवीं शताब्दी में बंगाल में स्थापित पाल राज्य बौद्ध धर्म का

अंतिम शरणदाता माना जाता है । आगे नवीं और दसवीं शताब्दी में नेपाल की तराईयों में शैव और बौद्ध साधनाओं में मिश्रण से नाथपंथी योगियों का एक नया सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ । इस्लाम के भारत आने से पहले उसके लिए वैचारिक व सामाजिक पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। ईश्वर की निराकार उपासना से भारतीय जनमानस अनजान न था । और इसका निर्माण महात्मा बुद्ध ने ही किया था । डॉ रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं, "दसवीं शताब्दी में ब्राह्मण धर्म सम्पूर्ण रूप से अपना प्राधान्य स्थापित कर चुका था, फिर भी बौद्धों, शाक्तों और शैवों का एक बड़ा भारी समुदाय ऐसा था जो ब्राह्मण और वेद की प्रधानता को नहीं मानता था। जब मुसलमान इस देश में आये, तब इन लोगों का मन डोलने लगा । वैदिक-धर्म में इन्हे इज्जत नहीं थी । उधर जिस निराकार भावना का इन लोगों के बीच प्रचार था, इस्लाम भी उसी निराकारोपासना को लेकर आया था ।" पूर्वी बंगाल के वेदबाह्य सम्प्रदायों के ध्वंसावशेष कई धार्मिक सम्प्रदाय ऐसे थे जिन्होने मुसलमानों को अपना त्राणकर्त्ता समझा । वे समूह-रूप में मुसलमान हो गये। पंजाब मे भी नाथों, निरंजनो और पशुपतों की अनेक शाखाएँ मुसलमान हो गयी । गोरखनाथ के सम्प्रदाय में अनेक बौद्ध, शैव, शाक्त सम्प्रदाय अन्तर्भुक्त हुए, परन्तु, इस सम्प्रदाय के भी बहुतेरे गृहस्थ मुसलमान हो गये । बगदाद में मंगोल आक्रमणकारी हलाकू खान के भयानक आक्रमण से भयभीत हो बहुत से सूफी संत हिंदुस्तान आ गये थे । वैसे तो इस्लाम से भारत का परिचय बहुत पहले से था और दर्शन के स्तर पर जब ईरान अरब से उपजी विचारधारा में अपने सांस्कृतिक आन्दोलनों के द्वारा दार्शनिक विचारों को रोप रहा था जिसने सूफीवाद के नये रूप को जन्म दिया जिसने मंसूर हल्लाज जैसे सूफी को यह ताकत दी कि वह "अनल हक" कह सका उससे बहुत पहले भारत में आदिगुरु शंकराचार्य "अहम ब्रह्मास्मि" का नारा दे चुके थे, जिसने रहस्यवाद को भारतीय आध्यात्म में स्वर प्रदान किया । पर इन राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं के फलस्वरूप भारत में हिन्दू और मुसलमान दो विभिन्न साधना पद्धतियाँ एक साथ रहने लगीं। आपसी ताल-मेल और संसर्ग का यह निष्कर्ष हुआ कि साधना की विभिन्न पद्धतियों में एक दूसरे का प्रभाव पड़ने लगा । बौद्ध विचारधारा ने भी सूफीवाद पर अपना प्रभाव डाला । ईश्वर की निराकार उपासना, मनुष्य की समानता, निर्वाण की प्राप्ति जैसी दार्शनिक समानताओं के अलावा प्रतीकों की एकरूपता भी दोनों मतों में पायी जाती है । यहाँ से सूफीवाद बौद्ध दर्शन के शब्दों की नाव बना अपने उस भविष्य की ओर चल पड़ा जिसमें अभी और आन्दोलन जुड़ने थे, जिसे आगे जायसी के साथ सात समुद्रों की यात्रा तय करना था ।

अब प्रश्न यह उठता है कि रहस्यवाद जैसे गूढ़ विषयों को जानने वाले प्रबुद्ध भारतीय समाज को दर्शन समझाने के लिए इन सूफी संतों व कवियों ने लोकव्याप्त प्रेम कथानकों का प्रयोग क्यों किया! वास्तव में सत्य तो यही है कि इसी एक प्रश्न के उत्तर में छिपा है भारतीय साहित्य परम्परा के विकास में प्रेमाख्यानकों का योगदान ।

गुरुदेव रविंद्र नाथ टैगोर जब "आमि सुदूरेर प्यासी बादलो धारा" जैसे महान गीत को लिख रहे थे तो वो बहुत गूढ़ दर्शन की बात

कर रहे थे। पर रविंद्र बाबू भारतीय चिंतन की नस- नस को जानते थे, वो जानते थे कि एक कण प्रेम मात्र से स्वयं को पूर्ण अभिसिंचित मान अपना सर्वस्व समर्पित कर देने वाला भारतीय बस प्रेम की भाषा में ही दर्शन समझ सकता है। तभी तो उसे मेघदूत भा जाता है, तभी वह शरत चंद को बुदबुदा कर पढ़ना चाहता है, तभी नदी के दो छोर उसे समानांतर बाद में चिर-विरही पहले समझ आते हैं। अज्ञेय की कालजयी रचना "शेखर: एक जीवनी" आज भी हर नवयुवक पढ़ता है। उसके अंदर का विद्रोह प्रेम में बदल जाता है। हीर-राँझा की कहानी भला किस भारतीय ने नहीं गायी होगी। अज्ञेय जब चिनाब पहुँचते हैं तो उन्हें नदी नहीं प्रेम दिखता है -" चनाब के किनारे ही हीर और रांझा, सोहनी और महिवाल का प्यार उपजा, पनपा, फूला और दुर्देव के विवर में झर गया – लेकिन सारे अंचल पर अपनी छाप छोड़ कर .....

"पार झनावीं मझीवाले डा डेरा/ सानू वी लै चल पार घड्या
देखन नूं दो नैन तरसदे/ मेल मेरा दिलदार घड्या"
(चनाब के पार मेरे महिवाल का डेरा है, मुझे वहां ले चल, घड़े ! देखने को नैन तरसते हैं, मुझे दिलदार से मिला दे, ओ घड़े !" (अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद ?)

और यही प्रेम सूफियों को भी उस समय दिख गया, जब भारतीय जनमानस सिद्धों-नाथों-कापालिकों के तन्त्र-मन्त्र से लड़ कर हार चूका था, ब्राह्मणों की संस्कृत जनचेतना से दूर जा बैठी थी और साहित्य विहीन समाज गुरुविहीन शिष्य की भांति इधर-उधर भटक रहा था।

जिस समय सूफी संत भारत आये वह करामातों का युग था। लगभग हर साधु-संत के नाम के कुछ किस्से समाज में आज भी मिलते हैं। प्रेमाश्रयी सूफी रचनाओं की कथावस्तु पर ध्यान दें तो यह करामातों, चमत्कारों से पूर्ण है। जायसी की पद्मावत सात समन्दर पार करते नायक की कथा है। सूफी संतों के योगदान की महत्ता बताते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, "पं. रामचंद्र शुक्ल ने कबीर आदि झाड़-फटकार के द्वारा 'चिढ़ानेवाले' सिद्ध हुए संतों के साथ उनकी तुलना करते हुए कहा है कि कबीर आदि का प्रयत्न हृदय स्पर्श करनेवाला नहीं हुआ। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ। अपने नित्य के जीवन में जिस हृदय-साम्य का अनुभव मनुष्य कभी-कभी किया करता है, उसकी अभिव्यंजना उससे न हुई। कुतुबन, जायसी आदि इन प्रेम-कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रखा, जिनका मनुष्यमात्र के हृदय पर एक-सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिंदू और मुसलमान-हृदय को आमने-सामने करके अजनबीपन मिटानेवालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन साधकों ने हिंदी में एक विशेष प्रकार के साहित्य को लुप्त होने से बचा लिया।"

सूफी संतों की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण इनके द्वारा चयनित भाषा और कथानक का आधार है। यद्यपि इनकी विचारधारा का मूल फारसी था फिर भी सामान्य जीवन की अपभ्रंश को अपना और कथानक के रूप में लोकगाथाओं का चयन इनके लिए वरदान साबित हुआ।

प्राचीन धर्म की कथाओं से परे लोककथाओं को आधार बना आगे बढ़ा यह आन्दोलन जल्द ही आमजन के बीच जा पहुंचा।

आचार्य हजारी प्रसाद जी लिखते हैं "कबीरदास के निर्गुण भजन, सूरदास के लीला-गान और तुलसीदास का रामचरितमानस अपनी अंतर्हित शक्ति के कारण अत्यधिक प्रचलित हो गए और हिंदू जनता का संपूर्ण ध्यान अपनी ओर खींचने में समर्थ हुए। परंतु जन-साधारण का एक और विभाग, जिसमें धर्म का स्थान नहीं था, जो अपभ्रंश साहित्य के पश्चिमी आकार से सीधे चला आ रहा था, जो गाँवों की बैठकों में कथानक रूप से और गान रूप से चल रहा था, उपेक्षित होने लगा था। इन सूफी साधकों ने पौराणिक आख्यानों के बदले इन लोक-प्रचलित कथानकों का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुँचाई।"

इन कहानियों का प्रारंभ मुल्ला दाऊद से, और कदाचित और पहले से आरंभ होती है। कुतबन शेख (सोलहवीं शताब्दी) की मृगावती जो दोहों और चौपाइयों में लिखी गयी, मलिक मुहम्मद जायसी (पद्मावत), उसमान (चित्रावली1613 ई.), शेख नबी (ज्ञानप्रदीप, 1620 ई.), कासिमशाह (हंसजवाहर 1731 ई.), नूर मोहम्मद (इंद्रावती,1644 ई.) और फाजिलशाह (प्रेम-रतन,1648 ई.) आदि प्रमुख काव्य हैं।

आचार्य द्विवेदी कुछ नयी रचनाओं पर प्रकाश डालते हुए ख्वाजा अहमद की नूरजहाँ, शेख रहीम का भाषा प्रेमरस, कवि नसीर का प्रेमदर्पण (1917 ई) सूफी प्रेमाख्यानों की इस श्रृंखला को आधुनिक काल तक छिटपुट रूप में ले आते हैं।

मृगावती नाम की कहानी कुतुबन द्वारा रचित है जिसमें चन्द्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारी की कन्या मृगावती की प्रेम कथा है। आचार्य शुक्ल लिखते हैं, "इस कहानी के द्वारा कवि ने प्रेममार्ग के त्याग और कष्ट का निरूपण करके साधक के भगवत्प्रेम का स्वरूप दिखाया है। बीच-बीच में सूफियों की शैली पर बड़े सुंदर रहस्यमय आध्यात्मिक आभास हैं।

भाषा और कथानक के अध्ययन की दृष्टि से पदमावत सूफी मत और रहस्यवादी अद्वैतवाद के समीप के संसार की रचना का उत्कृष्ट उदाहरण है। सूफी संत किसी अन्य जगत या परे के इतिहास की घटना लेकर नहीं आते, उनका मूल लोक है। वह जो सामने है, जिसकी भाषा जनसामान्य की भाषा है। यह लोक अनुभवों का संसार है।

जायसी की 'पद्मावत' लोक अनुभवों से परिपूर्ण है। यहां तक कि उसके काल्पनिक रहस्यलोक अर्थात् सिंहलद्वीप में भी बहुत कुछ वैसा ही है जैसा जायसी के समय के समाज में था। पद्मावत मात्र लोक-वृत्त नहीं है, इसमें एक कवि की अनूठी शैली भी दैदीप्यमान है जिसके अंतर्गत वह इतिहास को इससे जोड़कर एक पूर्ण महाकाव्य का दर्जा देते हुए मनुष्य जीवन को समग्र रूप में सामने ला देता है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी जी कहते हैं "लोक-वृत्त और ऐतिहासिक वृत्त का इस तरह आमना-सामना जायसी के अपने रचना विधान की निजी उपज है। संसार के महाकाव्यों में शायद ही कहाँ यथार्थ के ऐसे द्विखंडी रूप का चित्रण हुआ हो। लोक और शिष्ट ऐतिहासिक वृत्तको यो बगल-बगल रखने के पीछे कवि

की कई दृष्टियाँ हो सकती हैं। सुखांत और दुखत का यह मेल महाकाव्य को भी जैसे एक दरजा और ऊंचा उता देता हो। यहाँ महाकाव्य का न केवल शास्त्रीय सूचीबद्ध वर्णन है-संध्या प्रातः प्रदोष, युद्ध, मृगया आदि वरन् यथार्थ का पूरा द्विआयामो चित्रण है। मनुष्य जीवन की समग्रता और उसकी नियति का इससे अधिक पूर्ण और प्रभावी अंकन और कैसे हो सकता है?"

इन सूफी संतों को निर्गुण भाव के शास्त्र-निरपेक्ष साधकों की तरह ही शास्त्र-ज्ञान नहीं था पर ये पहुँचे हुए प्रेमी थे। इन्होंने प्रेम का जो रूप सामने रखा, वह भारतीय साहित्य में नई वस्तु है।

आचार्य हजारी प्रसाद जी सही ही कहते हैं "प्रेम की इस पीर के सामने ये लोकाचार की कुछ परवाह नहीं करते। भारतीय काव्य-साधना में प्रेम की ऐसी उत्कट तन्मयता दुर्लभ थी। विरह का वर्णन करने में ये कवि कमाल करते हैं। ये कथा कथा के लिए नहीं कहते, इनका लक्ष्य सदा भगवत्प्राप्ति रहता है। इसीलिए भगवान के विरह में जीवात्मा की तड़पन का ये बड़ी सजीवता के साथ वर्णन करते हैं। इन कवियों में सर्वश्रेष्ठ पद्मावतकार मलिक मुहम्मद जायसी हैं...."

भाषा, दर्शन, साहित्य और शिल्प की दृष्टि से सूफियों का भारत के आँगन में आना एक नव ऊर्जा का निर्माण सिद्ध हुआ । अपभ्रंश अपने रूप से आगे बढ़ा, भारतीय जनमानस बहुईश्वर और एकेश्वर के रहस्य को समझ पाया, वेदांत में निहीत दर्शन जनकथाओं के रूप में एक नए पहनावे के साथ आम जन तक पहुंचा । सत्यान्वेषण की साधना में सूफी साधक और वेदांत मनीषी, संत एक साथ आगे बढे ।

मंसूर हल्लाज जिस सत्य के लिए मार दिए गये वही सत्य, साधना की एक नयी परम्परा बन साहित्य और धर्म में एक निश्चित स्थान पा गया । सूफी कवियों ने आम बोलचाल की बोली में लोक में प्रचलित कहानियों को अपना मार्ग बनाया और मानो अकेले पड़े सीपी के मुख में स्वाती नक्षत्र की बूंद ही पड़ गयी । आम जन को मोती मिल गया और भारतीय साहित्य सरिता उसी वही प्रेम की नाव ले आगे बढ़ चली जो सम्पूर्ण भारतीय चिंतन परंपरा का मूल बिंदू है ।

धुरंधर

सफलता, विवाद और समीक्षात्मक विश्लेषण

डॉ. सुधांशु लाल
नाट्यकर्मी एवं
फिल्म समीक्षक, लखनऊ

भारतीय सिनेमा में समय-समय पर ऐसी फिल्में आती रही हैं जो केवल मनोरंजन का साधन नहीं रहतीं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बहसों का केंद्र बन जाती हैं। दो बीघा ज़म्में, अर्ध सत्य, गरम हवा, मंदी, तामस से लेकर बैंडिट क्वीन तक ऐसी ही फ़िल्में रही जो सिर्फ व्यवसायिक न हो कर समाज के अलग अलग मुद्दों को उठती रहीं हैं. ये कहना गलत होगा की आज के समय ऐसी फ़िल्में नहीं बन रही हैं आर्टिकल 15, जय भीम, फंद्री , मसान जैसी फिमे आज के युग में भी सामाजिक हकीकत को दिखा रही हैं. ऐसा नहीं है की सामजिक और राजनीतिक मुद्दों पे बनायीं गयी फ़िल्में सिर्फ एक खास वर्ग के दर्शोकं को ही पसंद आती हैं बल्कि ऐसे कई उदाहरण है जहाँ सामजिक और राजनातिक मुद्दों पे बनी फिल्मे व्यावसायिक रूप से भी काफी सफल रही हैं, स्वदेश, लगान , दंगल, pk, तारे ज़मीन पर, रंग दे बसंती जैसी फ़िल्में व्यावसायिक रूप से भी उतनी ही सफल रहीं जीतनी की अन्य मसाला फ़िल्में. इसी कड़ी में “धुरंधर” ऐसी ही एक फिल्म मानी जा सकती है जिसने अपनी रिलीज़ के साथ ही दर्शकों, समीक्षकों और सोशल मीडिया पर तीखी प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया। यह फिल्म अपनी कहानी, प्रस्तुति, हिंसा के चित्रण, और व्यावसायिक सफलता के कारण व्यापक चर्चा का विषय बनी। फिल्म उद्योग केवल कला का माध्यम नहीं है, बल्कि यह एक विशाल आर्थिक गतिविधि भी है। आज कल किसी भी फिल्म की वास्तविक सफलता का आकलन उसके बॉक्स ऑफिस कलेक्शन, निर्माण लागत, मार्केटिंग रणनीति, डिजिटल अधिकार, सैटेलाइट राइट्स और दर्शकों की मांग से किया जाता है। “धुरंधर” ऐसी फिल्म के रूप में देखी जा सकती है जिसने न केवल दर्शकों का ध्यान खींचा,

बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी उल्लेखनीय प्रदर्शन किया। "धुरंधर" ने बॉक्स ऑफिस पर उल्लेखनीय कमाई की और कम समय में ही बड़ी व्यावसायिक सफलता हासिल की।फिल्म में भव्य एक्शन दृश्य, बड़े सेट, तकनीकी गुणवत्ता और स्टार कास्ट के कारण इसका बजट अपेक्षाकृत अधिक रहा। बड़े बजट की फिल्मों में जोखिम भी अधिक होता है, इसलिए उनकी मार्केटिंग रणनीति भी आक्रामक होती है। फिल्म की मार्केटिंग रणनीति, ट्रेलर की उत्तेजक प्रस्तुति, और विवादों के कारण पैदा हुई जिज्ञासा ने दर्शकों को सिनेमाघरों तक खींचा। आज के डिजिटल युग में सोशल मीडिया ट्रेंड और मीम संस्कृति भी फिल्म की लोकप्रियता का बड़ा कारण बने।फिल्म के संवाद, एक्शन दृश्य और नायक की सशक्त छवि युवाओं के बीच अत्यंत लोकप्रिय हुई। इस प्रकार फिल्म ने यह साबित किया कि विवाद और चर्चा भी कभी-कभी फिल्म की कमाई का साधन बन जाते हैं।

फिल्म से जुड़े विवाद

फिल्म के कुछ दृश्यों में अत्यधिक हिंसा, आक्रामक संवाद और सामाजिक समूहों के चित्रण को लेकर कई विवाद सामने आए। कुछ लोगों ने इसे समाज में हिंसा को बढ़ावा देने वाला बताया, जबकि कुछ ने इसे यथार्थवादी प्रस्तुति कहा।सोशल मीडिया पर फिल्म को लेकर दो धड़े बन गए–एक पक्ष इसे साहसिक और वास्तविकता के निकट मानता है, जबकि दूसरा पक्ष इसे गैर-जिम्मेदाराना और समाज के लिए हानिकारक बताता है। कुछ समीक्षकों ने यह भी कहा कि फिल्म ने सनसनीखेज प्रस्तुति के लिए संवेदनशील मुद्दों का उपयोग किया।

हालांकि ये विवाद भी नया नहीं और सिर्फ फिल्मों तक सिमित नहीं है की कला के नाम पे कितना यथार्थवादीचित्रण हो सकता है चाहे वो साहित्य हो, पेंटिंग हो, मूर्ति कला हो , गीत हो, कविता हो या फिर फ़िल्में हो. विवाद सिर्फ यथार्द्वादी चित्रण पे नहीं बल्कि अश्लीलता और कलात्मकता पर भी रहा है की कैसे और कौन निर्धारित करेगा की कोई दृश्य, साहित्य या अन्य कला अश्लील है या कलात्मक सृजनता और अलग-अलग समाज में अलग-अलग चीज़ें प्रतिबंधित होती हैं और उनमे से बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं जो एक समाज में तो सहज रूप से ली जाती है किन्तु दुसरे समाज के लिए अश्लील या असहज हों । ये बहस बहुत व्यापक है इसे पर चर्चा और उद्धरण किसी और लेख में करेंगे ।

तो आईये हम देखते हैं समीक्षात्मक दृष्टि से "धुरंधर" फिल्म केसकारात्मक और नकारात्मक पहलू । धुरंधर व्यावसायिक रूप से काफी सफल होने के बावजूद एक मिश्रित प्रतिक्रिया प्राप्त करने वाली फिल्म है।"धुरंधर" को लेकर मीम, ट्रोल, रिव्यू और बहसों की बाढ़ आ गई। कुछ दर्शकों ने इसे 'मास एंटरटेनर' कहा तो कुछ ने इसे 'हिंसा का महिमामंडन' बताया ।

सकारात्मक पक्ष: फिल्म में कलाकरों का अभिनय सशक्त और संवाद प्रभावशाली रहा है । हालांकि फिल्म का नायक अत्यंत शक्तिशाली और आक्रामक रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह 'मास हीरो' की छवि को मजबूत करता है, लेकिन उसे मानवीय कमजोरियों या संवेदनाओं के साथ कम दिखाया गया है। जबकि अगर इसकी तुलना पठान या गदर 2 के नायक के साथ करें तो इनके नायक भावनात्मक और पारिवारिक आयाम से भी जुड़े हैं, जो उन्हें अधिक मानवीय बनाते हैं।

फिल्म छायांकन और एक्शन दृश्यों की तकनीकी उत्कृष्टता को दिखाती है, "धुरंधर" की सबसे बड़ी ताकत इसका छायांकन और एक्शन दृश्यों की भव्यता है। कैमरा एंगल, बैकग्राउंड स्कोर और एडिटिंग दर्शकों को रोमांचित करते हैं। यह पहलू KGFसे मिलता-जुलता है, जहाँ दृश्यात्मक प्रभाव फिल्म का प्रमुख आकर्षण था।

कहानी में रोमांच और गति पर धयान दिया गया है, "धुरंधर" की कहानी तेज गति और एक्शन प्रधान है। फिल्म दर्शकों को शुरू से अंत तक बांधे रखने की कोशिश करती है, और काफी हद तक ये सफल भी रहती है,लेकिन कहानी की गहराई और पात्रों के मनोवैज्ञानिक विकास पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है. इसके विपरीत, KGF

और पुष्पा जैसी फिल्मों में एक्शन के साथ-साथ पात्रों का विकास और पृष्ठभूमि विस्तार से दिखाया गया, जिससे दर्शकों का भावनात्मक जुड़ाव बढ़ा।

निर्देशन में नाटकीय प्रभाव है जो कि सिनेमा की आवश्यकता भी होती है फिर भी फिल्म में हिंसा और आक्रामकता का प्रयोग अधिक है। यह दर्शकों को रोमांचित करता है, परंतु कलात्मक संतुलन की दृष्टि से यह कुछ दर्शकों को असहज भी कर सकता है। इसके विपरीत, अन्य हिट फिल्मों में एक्शन के साथ भावनात्मक और सामाजिक संदेश भी समाहित होते हैं। इस फिल्म में भी राष्ट्रवाद को प्रेरित करने की कोशिश की गयी है किन्तु एक सनसनी के जरिये ।

नकारात्मक पक्ष पहला तो अनावश्यक हिंसा का अत्यधिक प्रयोग, दूसरा सामाजिक मुद्दों की सतही प्रस्तुति, कुछ पात्रों का एकांगी चित्रण तथा मनोरंजन के नाम पर संवेदनशीलता की कमी। फिल्म यह प्रश्न भी उठाती है कि क्या व्यावसायिक सफलता के लिए फिल्मकार सामाजिक जिम्मेदारी से समझौता कर सकते हैं? इस फिल्म को उस केटेगरी में नहीं रख सकते जहाँ सिर्फ व्यावसायिक सफलता के लिए निर्माता और निर्देशक फिल्म की कलात्मकता और सामाजिक ज़िम्मेदारी से समझौता करते हैं । इस फिल्म में निर्माता और निदेशक का अपनी कला को रखने का तरीका कुछ अलग है ।

निष्कर्ष और सुझाव

"धुरंधर" एक ऐसी फिल्म है जो यह दिखाती है कि सिनेमा केवल कला नहीं, बल्कि एक व्यापार भी है। फिल्म की सफलता यह दर्शाती है कि दर्शक रोमांच और एक्शन को पसंद करते हैं, परंतु विवाद यह संकेत देते हैं कि समाज फिल्मों से एक नैतिक जिम्मेदारी की भी अपेक्षा करता है।

मनोरंजन और सामाजिक संवेदनशीलता के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। हिंसा और विवाद के माध्यम से ध्यान आकर्षित करने के बजाय कहानी की गहराई पर ध्यान देना चाहिए।

अंततः, "धुरंधर" केवल एक फिल्म नहीं, बल्कि आधुनिक भारतीय सिनेमा में व्यावसायिकता, विवाद और दर्शकों की मानसिकता का प्रतिबिंब बनकर उभरी है।

आर्थिक दृष्टि से "धुरंधर" एक सफल फिल्म कही जा सकती है, क्योंकि इसने अपने बजट से अधिक कमाई की और कई माध्यमों से राजस्व अर्जित किया। परंतु जब इसकी तुलना अन्य बड़ी हिट फिल्मों से की जाती है, तो यह स्पष्ट होता है कि स्थायी सफलता के लिए केवल एक्शन और विवाद नहीं, बल्कि मजबूत कहानी, भावनात्मक जुड़ाव और व्यापक दर्शक वर्ग की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार, "धुरंधर" आधुनिक सिनेमा में उस प्रवृत्ति का उदाहरण है जहाँ आर्थिक सफलता के लिए मार्केटिंग, विवाद और सोशल मीडिया उतने ही महत्वपूर्ण हो गए हैं जितनी फिल्म की कहानी।सिनेमा केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि एक कला है जिसमें कहानी, अभिनय, छायांकन, संगीत, संपादन और निर्देशन जैसे तत्व मिलकर एक समग्र अनुभव रचते हैं। "धुरंधर" को यदि कलात्मक दृष्टि से देखा जाए तो यह फिल्म दर्शकों को तीव्र भावनात्मक और दृश्यात्मक अनुभव देती है, परंतु इसके साथ कुछ कलात्मक सीमाएँ भी सामने आती हैं।

कलात्मक दृष्टि से "धुरंधर" एक दृश्यात्मक रूप से प्रभावशाली और तकनीकी रूप से सशक्त फिल्म है, जो एक्शन और संवाद के माध्यम से दर्शकों को आकर्षित करती है। "धुरंधर" एक प्रभावशाली 'मास एंटरटेनर' है, परंतु 'क्लासिक सिनेमा' की श्रेणी में आने के लिए उसे कलात्मक परिपक्वता की और आवश्यकता प्रतीत होती है।

"सशक्त युवा समर्थ राष्ट्र"

गंभीर सिंह, पी.सी.एस.
अपर जिलाधिकारी, (वित्त एवं राजस्व)
आज़मगढ़, उत्तर प्रदेश

हर प्रयास सम्मान के योग्य है

प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने वाला हर युवा अपने सपनों के लिए संघर्ष करता है। कोई दिन-रात पढ़ाई करता है, कोई नौकरी के साथ समय निकालकर तैयारी करता है, तो कोई सीमित संसाधनों में भी हार नहीं मानता। हर अभ्यर्थी अपनी परिस्थितियों के अनुसार अपना सर्वश्रेष्ठ देने का प्रयास करता है। इसलिए किसी की सफलता या असफलता से पहले उसके संघर्ष का सम्मान करना चाहिए।

समाज का भी यह दायित्व है कि वह युवाओं का मनोबल बढ़ाए। एक सकारात्मक शब्द, एक छोटी-सी प्रेरणा और विश्वास से भरा व्यवहार किसी थके हुए अभ्यर्थी के लिए नई ऊर्जा बन सकता है। हमें तुलना करने के बजाय प्रोत्साहन देने की संस्कृति विकसित करनी चाहिए। अधिकारीगण यदि युवाओं का मार्गदर्शन करें, पारदर्शी व्यवस्था सुनिश्चित करें और उन्हें सही दिशा दिखाएँ, तो यह केवल एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि पूरे समाज की प्रगति होगी। इसी प्रकार विद्यालय प्रबंधन एवं परीक्षा केंद्रों से भी विनम्र आग्रह है कि परीक्षा देने आने वाले विद्यार्थियों के लिए पीने के पानी, बैठने की व्यवस्था, शौचालय, सही जानकारी और सहयोगपूर्ण वातावरण जैसी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराएँ, ताकि हर अभ्यर्थी बिना किसी अनावश्यक चिंता के अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर सके।

मैं, गंभीर सिंह, और हमारी पूरी टीम सदैव प्रयास करती है कि स्कूलों एवं परीक्षा केंद्रों पर आने वाले अभ्यर्थियों के लिए यथासंभव उचित व्यवस्था हो और उन्हें किसी प्रकार की असुविधा न हो। साथ ही आप सभी से भी एक विनम्र अपील है कि यदि परीक्षा के दिन रास्ते में कोई अभ्यर्थी अपने परीक्षा केंद्र की तलाश में परेशान दिखाई दे, तो यदि संभव हो उसे उसके परीक्षा केंद्र तक पहुँचाने या सही मार्ग बताने में अवश्य सहयोग करें। आपका यह छोटा-सा प्रयास किसी के जीवन की बड़ी सफलता का कारण बन सकता है।

माता-पिता का योगदान सबसे महत्वपूर्ण होता है। उनका विश्वास, धैर्य और स्नेह ही वह शक्ति है जो कठिन समय में भी युवाओं को आगे बढ़ने का साहस देता है। कई बार एक पिता का विश्वास और माँ की दुआ ही वह संबल बन जाती है, जो असंभव को भी संभव बना देती है।

युवाओं को भी यह समझना चाहिए कि सफलता केवल परिणाम का नाम नहीं है, बल्कि निरंतर सीखने, अनुशासन, धैर्य और ईमानदार प्रयास का नाम है। परीक्षा का परिणाम चाहे जैसा हो, मेहनत कभी व्यर्थ नहीं जाती। वह अनुभव, आत्मविश्वास और व्यक्तित्व के रूप में जीवनभर साथ रहती है।

"सपने उन्हीं के पूरे होते हैं, जो परिस्थितियों का इंतज़ार नहीं करते, बल्कि अपने प्रयासों से परिस्थितियाँ बदल देते हैं।"

आइए, हम सब मिलकर ऐसा समाज बनाएँ जहाँ हर युवा को प्रोत्साहन मिले, हर माता-पिता का विश्वास उसकी ताकत बने, हर अधिकारी प्रेरणा का स्रोत बने और हर नागरिक यह कहे—

"तुम मेहनत करते रहो, हम तुम्हारे साथ हैं। क्योंकि एक युवा की सफलता केवल उसके परिवार की नहीं, बल्कि पूरे समाज और राष्ट्र की सफलता होती है।" मै जहाँ-जहाँ भी उपजिलाधिकारी के पद या सिटी मजिस्ट्रेट रहा कभी भी किसी भी युवा को 107/16 या 151 मे कभी जेल नहीं भेजा उसमे सुधारात्मक कार्य के लिए प्रयास किया, ज़ब कभी बेरोजगार युवा मेरे कार्यालय में आता है उसके काम के साथ-साथ उसको मोटिवेशन और मार्गदर्शन भी करता हूँ अगर उसकी कोई मदद और भी करनी होती है तो उसको पूरा करने का प्रयास भी करता हूँ। यही नहीं कोई आर्थिक रूप से कमजोर माता पिता अपने बच्चे की शिक्षा के लिए आते है उनकी बढ़-चढ़ कर मदद भी किया है जहाँ जहाँ पोस्टिंग रही वहां क़े छात्रावास और पुस्तकालय को सही करवाया इतना ही नहीं अब तक बहुत सारे स्कूलों का जीर्णोद्धार भी करवाया अब राइट टू एजुकेशन क़े तहत कई हज़ारो बच्चों का एडमिशन भी करवाया ।

वो चिट्ठी

युवा कहानीकार
– संजना सिंह
मऊ, उ.प्र.

बारिश की एक ठंडी शाम थी। सत्रह साल की निशा अपनी पुरानी अलमारी साफ़ कर रही थी। तभी उसे एक छोटा-सा डिब्बा मिला। डिब्बे में कुछ तस्वीरें, एक टूटी हुई घड़ी और एक चिट्ठी रखी थी। चिट्ठी पर लिखा था- "मेरी प्यारी निशा के लिए।" यह उसके पिता की लिखावट थी।

निशा के हाथ काँपने लगे। उसके पिता का कई साल पहले निधन हो चुका था। उसने धीरे-धीरे चिट्ठी खोली। चिट्ठी में लिखा था- "अगर तुम यह चिट्ठी पढ़ रही हो, तो शायद मैं तुम्हारे पास नहीं हूँ। मुझे पता है कि तुम्हें मेरी बहुत याद आती होगी। लेकिन एक बात हमेशा याद रखना- तुम कभी अकेली नहीं हो। जब भी तुम्हें लगे कि कोई तुम्हें नहीं समझता, आसमान की तरफ़ देखना। मैं उन तारों में कहीं न कहीं तुम्हारी मुस्कान देख रहा होऊँगा। बेटा, जिंदगी हमेशा आसान नहीं होगी। कुछ लोग साथ छोड़ देंगे, कुछ सपने टूट जाएंगे। लेकिन तुम हार मत मानना। मुझे तुम पर हमेशा गर्व रहेगा।"

निशा की आँखों से आँसू बहने लगे। उसे याद आया कि बचपन में जब वह डर जाती थी, तो उसके पिता उसे कंधे पर बैठाकर कहते थे, "मेरी बेटी सबसे बहादुर है।" उसने चिट्ठी को सीने से लगा लिया। उसी समय उसकी माँ कमरे में आईं। निशा रोते हुए उनकी गोद में सिर रखकर बोली,"माँ, पापा आज भी मेरे साथ हैं ना?" माँ की आँखें भी भर आईं। उन्होंने निशा के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "हाँ बेटा, जो लोग हमें सच्चे दिल से प्यार करते हैं, वे कभी पूरी तरह दूर नहीं जाते। वे हमारी यादों, हमारी बातों और हमारे हौसले में हमेशा ज़िंदा रहते हैं।"

उस रात निशा छत पर गई। आसमान में अनगिनत तारे चमक रहे थे। उसने मुस्कुराकर आसमान की ओर देखा और धीरे से कहा,"पापा, मैं ठीक हूँ। और मैं हार नहीं मानूँगी।" ऐसा लगा जैसे एक तारा बाकी तारों से थोड़ा ज़्यादा चमक उठा हो। उसकी आँखों में आँसू थे, लेकिन इस बार उन आँसुओं के साथ एक नई उम्मीद भी थी।

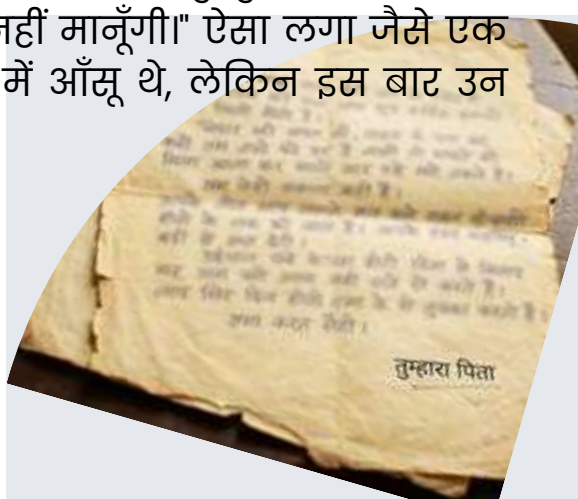

जुलाई
2026

चित् भूमियां

विवेक मिश्रा

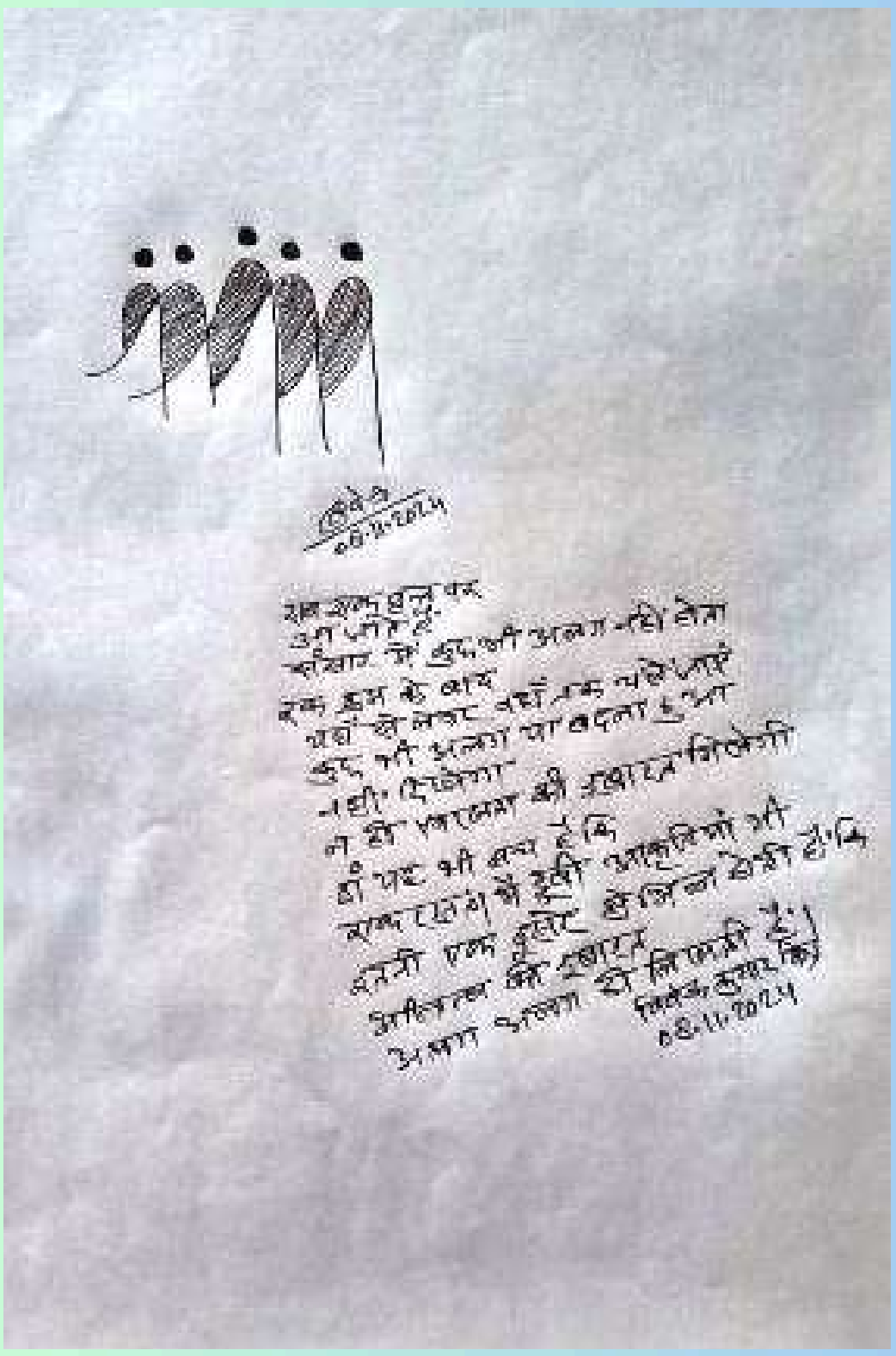

विवेक मिश्रा,
प्रसिद्ध लेखक, कवि
कोटा, राजस्थान

कविता

चिह्न मिट जाज्यो

खबर सुनी थी जब लड़का मर गया मेरा,
अपनों ने,
उनका रोम-रोम खिला,
मुस्कुराहट सजी थी।

आशीर्वचन बड़ी जीजी बोली-
राम करे! गैवी को चिह्न मिट जाज्यो।।

पवन कुमार "मारुत"
सहायक आचार्य (हिन्दी),
राजकीय महाविद्यालय, कनवास,
कोटा, राजस्थान

(चिह्न मिट जाज्यो :
यह राजस्थान के मेवाती भाषा का मुहावरा है जिसका अर्थ है " सब कुछ समाप्त हो जाना, चिह्न मिट जाना)

निश्छल प्रेम

हे मेरे निश्छल प्रेम !
मेरा अंतर्मन जानता है,
तुम अगाध हो, तुम अनुपम हो ।
तुम प्रकृति में उत्कट हो ,अद्वितीय हो,
तुम अद्भुत हो, तुम अविस्मरणीय हो ।
तुम भौतिक हो और अभौतिक भी हो,
तुम लौकिक हो और अलौकिक भी हो,
तुम वास्तविक हो और काल्पनिक भी हो,
पर तुम अव्यक्त हो अकथनीय हो ।
इसलिए कह नहीं पाते अपनी पीड़ा ।
पर मैं जानता हूँ तुम्हारी पवित्र पीडा को ।
मेरा अंतस्तल सचमुच समझता है,
बरसते सावन में तेरी चीखो और चित्कारो को,
हर्षित बसंत में तेरी अंगडाई की आहों को ।
पुष्पित पुष्प सरीखे तेरे यौवन की कराहो को,
फिर भी तुम अजर हो , अमर हो,
तुम सदियों से बसुन्धरा का चिरयौवन हो।
हे मेरे पवित्र पावन प्रिय प्रेम!
तुम निर्विकार हो,तुम निर्विचार हो,
तुम निर्विकल्प हो तुम निष्कपट हो,
इसलिए अविरल गंगा की तरह निर्मल हो ।
पर सदियों से तुम सर्वदा और सर्वत्र कलन्कित हो,
पर मेरा अंत:करण जानता है कि-तुम निषकलंक हो ।
क्योंकि तुम इकलौती अनिर्वचनीय हो।
पर हे मेरे सरल,सहज सच्चे प्रेम!
तुम उत्थान हो, तुम उत्कर्ष हो,
तुम हर अंत:करण का उमंग और हर हृदय का हर्ष हो।
तुम हर व्यथा की सर्वोच्च बन्दना हो,
तुम हर साधक की सर्वोत्तम साधना हो,
तुम हर पीड़ा की उत्कृष्टतम प्रार्थना हो,
सृष्टि और सृजन के संकल्पी की सुन्दरतम संकल्पना हो,
तुम सच्चे याचक की सच्ची अर्चना हो,
तुम हर आराधक की स्निग्ध आराधना हो।
इसीलिये तुम युगों-युगों का युगधर्म हो ,
तुम कालजयी अजस्र युगधारा हो,
तुम प्रकृति का परिपूर्ण श्रृंगार हो,
बसुन्धरा के सौंदर्य का ससर्वश्रेष्ठ निखार हो,
तुम हर अनुत्तरित प्रश्न का सुनिश्चित निष्कर्ष हो ,
इसलिए हे मेरे निश्छल प्रेम! तुम सचमुच निश्छल हो ।।

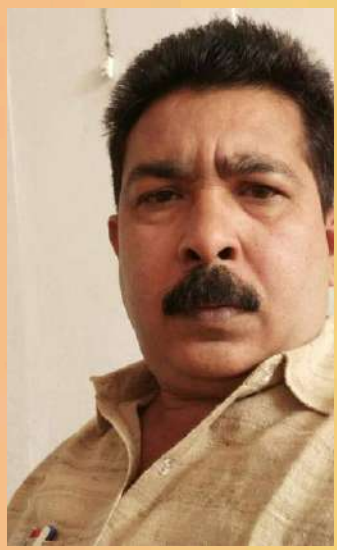

मनोज कुमार सिंह
वरिष्ठ साहित्यकार
प्रवक्ता, बापू स्मारक इंटर कॉलेज
दरगाह मऊ

धमाके

धमाकों से पहले.....
चलने लगते हैं मन में कई धमाके
फैलने लगते हैं बारूदी गंध में
डर के धुंध
ओझल होने लगती है
फूलों की महक
चिड़ियों की चहक
बाल मन की किलकारियां आदि

धमाकों के बीच ....
चिराग नहीं जलते
धमाकों के बीच चूल्हा नहीं जलते
धमाकों के बीच स्कूल नहीं चलते
जब चिराग नहीं जलता
चूल्हा नहीं जलता
स्कूल नहीं खुलता
तो बस्तीयां बन जाती है खंडहर ।

और धमाकों के बाद.....
बिखर जाता है स्कूल का बस्ता
उड़ने लगते है प्रेम के परखच्चे
छा जाते हैं नफरत के बादल
बरसते है बारूद के गोले
रक्त से गीली हो जाती है धरती।

डॉ. धनञ्जय शर्मा
असि.प्रोफेसर, एस.पी.जी. कॉलेज
घोसी, मऊ
उत्तर प्रदेश

भागती लड़कियाँ

मुझे अच्छी लगती हैं भागती हुई लड़कियां
सपनों को पूरा करने
गांव की कच्ची मिट्टी से
शहर की पक्की सड़कों पर दौड़ लगाती लड़कियां ।

सब दौड़कर छूना चाह रहीं है
चौकन्नी आंखों में बुने सपनों को
अपनी- अपनी दौड़ में
कुछ धीरे, कुछ तेज, कुछ कदमों में बांधती
जिम्मेदारियों के पहाड़ों को लांघते हुए
सपनों की लड़ाई में
मुंह अंधेरे, सर्द भरे मौसम में
किसी सरकारी स्कूल के धूल भरे ग्राउंड में
अपने सपनों के पीछे
हजारों चक्र लगाती नज़र आ रहीं है लड़कियां ।

आखों में एक चमक, शरीर में थकान
कंपकंपी देह लेकर अपनी गति सीमा
देखते-देखते भाग रही हैं
इस उम्मीद से कि
शायद किसी सपने को छू लेंगी ।

यह दौड़ एक अभ्यास नहीं
बल्कि पूर्वाभ्यास है
समय से जुड़कर चलने का तरीका
जबकि ना समय, ना सपना कहीं ठहरता है
एक विश्वास है लंबी दौड़ में
सब को पछाड़ने का
हजार फब्तियों को सहकर
लड़कियां इतनी जिद्दी हैं
कि रूकने का नाम ही नहीं लेती
कभी मां की तल्खियां, कभी बाबा की रुसवाई
घर से साथ ढ़ोती बिखरे हुए घर की नियति
निश्चित भाड़े की शर्त पर,
कोई कमरा
करता है इन लड़ाइयों की पैरवी
अपनी प्रतिष्ठा दांव पर लगा कर
उपहास का पात्र बन फिर से सपनों को देखती
अपने सपनों की लड़ाई में व्यस्त रहती लड़कियां ।

कर रही है विज्ञान,गणित, रसायन के समीकरण हल
पढ़ती हैं कला,साहित्य और भौतिक शास्त्र
पढ़ाई के साथ अपनी अस्मिता हेतु
पीठ पर सपने ढो रही हैं
हर पल दौड़ती भागती लड़कियां ।

रोमिता शर्मा
कुन्हों, करसोग,जिला मण्डी,
हिमाचल प्रदेश

तुम्हारी परछाई अब भी
कमरे की दीवार पर उतर आती है,
जब शाम का सूरज खिड़की से गुज़रता है।
पर वो उजाला वैसा नहीं,
जैसा कभी तुम्हारा हाथ पकड़कर महसूस होता था।

चाय की प्याली में अब भी भाप उठती है,
पर उसकी महक में तुम्हारी हँसी घुली नहीं होती।
बरामदे की कुर्सी अब भी पड़ी है वहीं,
लेकिन उस पर बैठकर कोई बात नहीं होती
बस चुप्पी फैल जाती है,
जैसे धूल धीरे-धीरे फैलती है किताबों पर।

मैं उलझा नहीं हूँ तुम्हारे बारे में,
मैं बस खुद को सुलझा रहा हूँ।
जैसे पुराने संदूक से कपड़े निकालकर
अलग करता हूँ – कौन-सा रखना है, कौन-सा छोड़ना।
तुम उस संदूक में रखी रेशमी साड़ी-सी हो
जिसे फेंका नहीं जाता,
सिर्फ़ तह करके फिर से रख दिया जाता है।

हम अजनबी नहीं हुए,
पर पहले जैसे भी नहीं रहे।
कुछ वैसे ही जैसे बारिश के बाद का आकाश
जिसमें बादल बचे रहते हैं,
पर इंद्रधनुष आने से पहले ही टूट जाता है।

तुम अब मेरे पास नहीं हो,
पर दूर भी नहीं।
एक ख़ामोश गीत की तरह हो
जिसकी धुन कानों में नहीं,
दिल की तहों में बजती रहती है।

ना कोई शिक़ायत है,
ना कोई अदावत
बस दिल पहले जैसा मुलायम नहीं रहा।

खिड़की पर रखी पुरानी किताब की तरह,
जिसके पन्नों से अब भी
थोड़ी-सी धूप झरती है,
थोड़ी-सी खुशबू अटकी रहती है।

बरामदे में रखा खाली झूला,
अब भी तुम्हारे वक़्त का इंतज़ार करता है,
हवा जब उसे हिलाती है
तो लगता है जैसे कोई चुपचाप गुज़र गया हो।

तुम अब उलझन नहीं हो मेरे लिए,
बस एक अधूरी पंक्ति हो,
जिसे मैं बार-बार पढ़ता हूँ
और हर बार अलग मायने मिल जाते हैं।

हम अजनबी भी नहीं हुए,
और पहले जैसे भी नहीं
कुछ वैसे ही जैसे बरसात के बाद
पेड़ की शाख़ पर लटका हुआ आख़िरी क़तरा
अगर टिक जाए तो सूरज में चमक उठता है,
गिर भी जाए तो ज़मीन में समा ही जाता है।

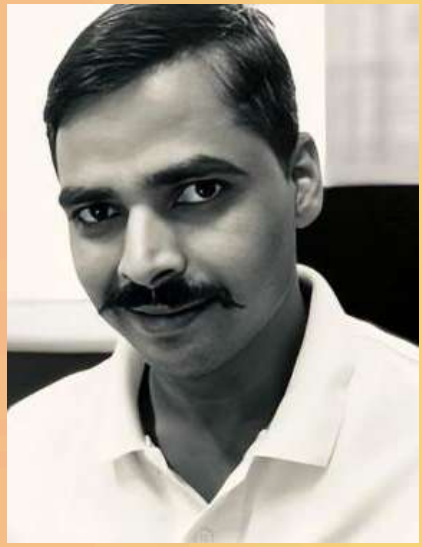

आनंद विक्रम सिंह
मऊ
उत्तर प्रदेश

मेरी प्रिये

तुम मुझसे प्रेम करो
जैसे मैं तुमसे करता हूँ
बिल्कुल
उसी तरह
जैसे मैं सूने आँगन में
अनार की छांव में बैठकर
हथेली को कपोल से सटाकर
तुम्हारी लहराती केशों में
गुलाब की गंध की तरह
तुम्हारे होने को
महसूस करता हूँ
तुम मुझसे प्रेम करो,,,,,,,
जैसे मैं तुमसे करता,,,,

तुम्हारी हिचकियों में
तुम्हारी सिसकियों में
एक घूट पानी की तरह
आकाश में छिपे तारों
की रोशनी की तरह
जैसे चंद्रमा चकोर से करता है
बिल्कुल उसी तरह
तुम मुझसे प्रेम करो
जैसे मैं तुमसे करता हूँ ।

कामरान खान
आज़मगढ़, उत्तर प्रदेश

कृतिका सिंह के कार्टून

कृतिका सिंह जी उभरती हुई कार्टूनिस्ट हैं, जीवन के विविध पक्षों पर आपके सीधे हस्तक्षेप करते कार्टून बहुत लोकप्रिय हैं, आप कृतिका जी को उनके फेसबुक पेज Kritika cartoonist https://www.facebook.com/cartoonistkritika?mibextid=ZbWKwL पर फॉलो भी कर सकते हैं

वीथिका ई पत्रिका :आपसे आपकी बात

वीथिका ई पत्रिका साहित्य, कला, संस्कृति और विज्ञान को समर्पित मासिक ई पत्रिका है. आप हमारे वेबसाइट www.vithika.org से पत्रिका डाउनलोड कर सकते हैं, व लेखों, रचनाओं पर हमें अपने विचार भी भेज सकते हैं. वीथिका ई पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख, लेखक के अपने विचार हैं, इनसे या इनके विचारों से पत्रिका या पत्रिका की सम्पादकीय समिति किसी प्रकार की सहमति नहीं रखती.

हमें अपनी रचना या लेख भेजने के लिए आप उसे हिंदी भाषा में टाइप कर हमें जीमेल या whatsapp कर सकते हैं :

Gmail : vithikaportal@gmail.com
whatsapp: 8175800809